लोक जीवन का स्वरूप विवेचन

*डॉ. गोकुल चन्द सैनी

शाब्दिक अर्थ में लोक अनेकार्थी शब्द है। कहीं इसका अर्थ "भुवन, जगत, जन, पूजा, मनुष्य है"[1] तो कहीं - "लोग, मनुष्य, व्याकरण, गम, जाम, कीर्ति, संतान, सृष्टि के विभाग"[2] आदि के अर्थ में इसे प्रयुक्त किया गया है।

सभी अर्थों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि लोक का एकल मुखर अर्थ है- विश्व अथवा संसार। "विश्व का अखिल और अखण्ड रूप लोक, शब्द में झलकता है।"[3] शब्द की भांति लोक की परिभाषा भी विशदार्थी है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में-"लोक शब्द का अर्थ ,जनपद, या ग्राम्य नहीं है। बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यायहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमास्ता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती है उनको उत्पन्न करते हैं।[4] यहां द्विवेदी जी ने लोक को मनुष्य समाज के पर्याय के रूप में लिया है। पर लोक में परिगणित किए गए समाज के लिए उन्होंने सीमा रेखा भी खींची है तथा उनके कार्य और जीवन व्यवहार भी पारिभाषित किए हैं।

उपनिषद् में वर्णित है एको न मोदते अर्थात अकेला व्यक्ति आनंदित नहीं हो सकता। यही लोकजीवन की महत्ता का सबसे बड़ा सूत्र है। लोक में सामान्य और असामान्य जन की उपस्थिति आवश्यक है। इन सामान्य असामान्यजन के अनुवर्तन का आचरण ही लोकजीवन की अभिप्रेरणा बनाता है।

लोकजीवन का विधान सहजीवन का विधान है। यह सहजीयन की मानना ही ओक में सामान्य और विशिष्ट के भेद को भुलाकर जीने की प्रेरणा देती है। लोक विज्ञानी एकाकी जीवन वर्षे निषेधमय बताते है तथा उससे परहेज करने की बात करते हैं। ये कहते हैं- "लोकजीवन का यह विघटन आज आदमी के लिए खतरे की घंटी है। लोकजीवन के क्षीण होने पर आनंद और रस रंग के वे स्त्रोत जिन्हें हम कला कहते हैं, क्षीण हो जाए तो आश्चर्य ही क्या है आज का व्यक्तिवाद लोकजीवन के विघटन का अंतिम छोर है। जिसके आगे प्रलय है, लय की समाप्ति।[5]

लोकजीवन के विधान में "अपनापन" और "समानता" के भाव कार्य करते हैं। अपनेपन की व्याख्या लोक में समान व्यसन और शील के आधार पर की गई है। अपनेपन का भाव लोकजीवन में पारस्परिकता को बढ़ावा देता है। तथा पारस्परिकता से समाज अथवा लोक मे सद्भाव कायम होता है। इसी भांति लोक में समानता

के भी धर्म, सम्प्रदाय, रंग जाति, भाषा बोली, पहनावा व राष्ट्रीयता जैसे कई आधार हैं तो व्यक्ति को व्यक्ति से समाना स्तर पर जोड़ते हैं। लोकजीवन में सामाजिक संगठन की चेतना पाई जाती है।

लोकजीवन में सर्व की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। समष्टि चेतना से लोक का स्वरूप निर्मित होता है तथा उसकी सभी प्रवृतियों को जीवंत रूप में देखना ही लोकजीवन है। जीवन का सम्बन्ध इच्छा अथवा जिजीविषा से है। इसलिए लोकजीवन के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह चेतना की भूख और मन की मौलिक मांग है।

लोकजीवन का महत्व

लोक में समष्टि चेतना को महत्व प्रदान किया गया है और समष्टि चेतना का आधार है- निरन्तर सर्जन। यह आधार लोकजीवन का आधार भी है। बिना नूतन सर्जन के लोकजीवन ह्रास और विनाश को प्राप्त हो जाता है। लोक में एक से अनेक की महत्ता प्रतिपादित की गई है। इसलिए लोकजीवन में जो कुछ भी श्रेष्ठ है वह लोक ही का है और लोक ही है।

यहां लोकजीवन के महत्व को जानने में दो बाते सामने आती हैं। एक लोकजीवन में लोक की श्रेष्ठ महत्ता और दूसरी जीवन पक्ष की अनिवार्य सर्जनात्मकता। विचारकों ने लोक में लोक की उपस्थिति को ईश्वर से भी बड़ा बताया है और दूसरी और सर्जनात्मकता के सम्बन्ध में कहा है-लोक जीवन में जीवित रहने का एक विधान है नित्य भूतनता का सृजन व उद्घाटन।

राजस्थानी लोकजीवन

विश्व के भौगोलिक परिदृश्य में राजस्थान एक छोटा सा प्रदेश है। किन्तु भारत के विभिन्न प्रान्तों में यह एक ऐसा प्रान्त है जो अपने आगोश में अतीत की अनेक गौरवशाली गाथाओं को समेटे है। यह प्रान्त अपनी विशिष्ट लोकसांस्कृतिक छवि के कारण विश्व भर में अपनी अलग पहचान रखता है। शूरवीर, धीरता और लोकानुरंजन का प्रतीक

राजस्थान का लोक जीवन इसकी गौरवमयी परम्पराओं के अनुकूल रहा है। यहां का लोकमानस, लोककलाओं से परिपूर्ण रहा है। यही कारण है लोकमानसीय अभिवृत्तियों के भिन्न-भिन्न रूपों को यहां भरपूर संरक्षण मिला।

इस प्रदेश की लोक कलात्मक सृष्टि में क्षेत्रीय व्यक्तित्त्व और कृतित्व की स्पष्ट झलक है। अपनी ही प्रादेशिकता (जिसे इतिहास और भूगोल में निर्मित किया है) की दृष्टि से राजस्थान सम्पूर्ण भारत के सांस्कृतिक वैभिन्य में अपनी विशिष्ट विभिन्नता रखता है। अपितु अपने सभी पडौसी सांस्कृतिक इकाइयों से भी पृथक अस्तित्व रखता है। गुजरात-पंजाब महाराष्ट्र का पड़ौसी होते हुए भी राजस्थान की चेतना उसका मानसिक गठन और उसकी मानवीय व्यंजना का रवरूप भिन्न है अर्थात अपने आप में राजस्थान स्वतंत्र सांस्कृतिक इकाई है।"[6]

राजस्थान के लोकजीवन में लोक का पक्ष अधिक मुखर है। तभी तो कहा गया है- भारतीय प्राचीन परम्परा के संरक्षण में राजस्थान सदा से अग्रणी रहा है। प्राचीन साहित्य रीति-रिवाज धर्म कला व सांस्कृतिक परम्परा राजस्थान में आज भी बहुत अच्छे परिणाम में सुरक्षित व विकसित देखने में आती है।"[7] राजस्थान की उज्ज्वल संस्कृति को यहां का दुस्तर जीवन समस्याएं और आपदाएं भी मलिन नहीं कर सकी। इस प्रदेश की संस्कृति ने अद्‌भुत शौर्य सौन्दर्य और भानवीय मूल्यों की स्थापनाएं की है। राजस्थान की प्रकृति ने जो अभाव प्रदान किये अर्थात मरुस्थल, अकाल, कम वर्षा, खेती के साधनों का अभाव आदि-आदि सभी तथ्य यहां के निवासियों के मन में उमंग उल्लास और उत्साह को कम नहीं कर सके। अपनी जीविका उपार्जन के लिए संतोष के पश्चात् लगभग सारा अवकाश-काल लोक संस्कृति की उन्मेषपूर्ण गरिमा में ही लगता रहा।"[8]

अनेक लोकतत्व मिलकर लोकजीवन को सम्पूर्णता प्रदान करते हैं जैसा कि डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा था कि लोकजीवन का तात्पर्य किसी ग्राम या नगर के जीवन से नहीं लिया जा सकता। वृहत्तर अर्थ में लोक जीवन के अंतर्गत एक क्षेत्र के लोगों के समस्त मानवी क्रिया-कलापों, विश्वासों, विचारों, लोकानुरंजनों, पर्वो-उत्सवों तथा सभी सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधियों का मूल्यांकन किया जाता है। लोक वार्ता में सीमित लोक तत्वों की व्याख्या की जाति है वहीं लोकजीवन में लोक की एक-एक प्राचीन अर्वाचीन गतिविधियों पर नजर रखी जाती है। लोकजीवन के तत्व का क्षेत्र विस्तृत है-समस्त जनसंस्कृति का यह एक संश्लिष्ट रूप है। लोकतत्वों के बारे में कहा गया है कि "इन लोकतत्वों के ही माध्यम से हम जनता के सुख-दुःख उसके हर्ष-विषाद का उसकी अनुभूतियों का दर्शन करते हैं। जन संस्कृति और लोकसंस्कृति का अनुमान लगा पाते हैं। इन लोकतत्वों में जन साधारण का स्वर है।[9] राजस्थानी लोकजीवन में इन लोकतत्वों की बहुलता रही है।

लोकजीवन में जीवन के विविध पक्षों का वर्णन किया जाता है। इस दृष्टि से राजस्थानी लोकजीवन अत्यंत समृद्ध रहा है। यहां का हर दिन किसी लोकोत्सव से कम नहीं है. तो हर पल सोदेश्यत्ता की पूर्णता

से भरा है। मरणा मू मंगल गिणै राजस्थानी संस्कृति का उज्ज्वल गौरव संदेश रहा है। राजस्थानी लोकजीवन विविध आयामी रहा है और उसका एक-एक आयाम प्राचीन काल से अद्यावधि अपनी रंग-बिरंगी और जीवंत छटाओं से ओत-प्रोत रहा है।

लोकजीवन को सरस बनाए रखने तथा जन समूह में पारस्परिकता एवं नैकट्य स्थापित करने में लोकपर्वो एवं उत्सवों की अहम् भूमिका होती है। राजस्थानी लोक में अनेक लोकोत्सव हैं जो धार्मिक एवं आनुष्ठानिक स्वरूप में धार्मिक उत्सव के रूप में परिणत हैं। होली दिवाली गणगौर आखातीज जैसे लोकपर्वो को सम्पूर्ण धार्मिक आस्था एवं उल्लास के साथ सामूहिक रूप से मनाया जाता है। लोक में पर्वो उत्सवों, अनुष्ठानों के प्रति गहरी श्रद्धा भावना पाई जाती है। वैसे तो राजस्थानी जन का पूरा जीवन ही उत्सवमय है किन्तु अवसर विशेष पर भिन्न उत्सवों की आयोजना कर लेना यहां की संस्कृति और मनुष्य का स्वभाव रहा है। किसी खुशी के अवसर को उत्सव के रूप में मनाया ही जाता है किन्तु रूढ़ियों के रूप में मृत्यु हो जाने पर भी

औसर जैसे आयोजन पूरी उत्सवधर्मिता के साथ पूरे किये जाते हैं। श्राद्ध पक्ष में एक पूरे पखवाड़े राजस्थानी लोक में उत्सव की सी रेल पेल रहती है। ऋतु परिवर्तन के भी यहां कई उत्सव एवं त्यौहार है सर्दियों में संक्रांति गर्मियों में बासोड़ा तो चौमासे में श्रावण तीज के त्यौहार ऋतुओं से जुड़े हुए हैं।

लोकविश्वास - सामान्य अर्थ में आज लोकविश्वास को अंधविश्वास कहकर उन पर विचार करने को कहा जाता है किन्तु राजस्थानी लोक में विश्वासों को जीवन के प्रति श्वांस की भांति ही आवश्यक माना गया है। लोक विश्वासों के पीछे कोई वैज्ञानिक धारणा मौजूद है कि नहीं इस तथ्य का सत्यान्वेषण बहुत कम किया जाता है। अनेक विश्वास समाज में पौराणिक काल से प्रचलित हैं। शकुन-अपशकुन, अंग फड़कना, अंगो में खुजली आना, ऋतु एवं मौसम विज्ञान सम्बन्धी अनेक लोक विश्वास प्राचीन काल से यहां प्रचलित रहे हैं। लोक तथा परामानवीय शक्तियों को लेकर भी समाज में देरों विश्वास प्रचलित हैं। विश्वासों को मानने की कोई बाध्यता नहीं होती फिर भी ये परम्पराओं से अथवा देखा-देखी से लोक में व्यवहत होते आए हैं। व्यक्ति पग-पग पर इन विश्वासों के अदृश्य य निर्देशों से से संचालित होकर कार्य करता है।

***व्याख्याता– हिन्दी**
स्वामी विवेकानन्द राजकीय महाविद्यालय,
खेतड़ी

सन्दर्भ

1. हलायुद्ध कोश स. जयशंकर पृष्ठ 502
2. हिन्दी शब्द कल्पद्रुमः स.प. रामनरेश त्रिपाठी पृष्ठ 634–35
3. लोक वार्ता विज्ञान(भाग–1) डॉ0 हरद्वारी लाल शर्मा पृष्ठ 2
4. जनपद वर्ष–1 डॉ0 हजारी प्रसाद द्वीवेदी पृष्ठ 65
5. लोक वार्ता विज्ञान(खण्ड–2) डॉ0 हरद्वारी लाल शर्मा पृष्ठ 617
6. बातां री फूलवारी भाग–8 (कोमल कोठारी) पृष्ठ 2
7. राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा अगरचन्द नाहटा पृष्ठ 80
8. राजस्थानी लोक साहित्यः नानू राम संस्कृता पृष्ठ 13
9. भारतेन्दू यूगीन हिन्दी काव्य में लोक तत्व डॉ0 विमलेश कांति पृष्ठ 33